IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

डॉ० f”ावप्रसाद सिंह के उपन्यासों की एक झलक

PUSHPA KUMARI

DEPARTMENT OF HINDI

RESEARCH SCHOLAR

SIDO KANHU MURMU, UNIVERSITY, DUMKA

Abstract- डॉ० f”ावप्रसाद सिंह के व्यक्तित्व की विराटता को भाब्दों में नहीं बाँधी जा सकती है। उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था । वे हिन्दी साहित्य मंजूशा के दैदीप्यमान रत्न थे। वे मानवतावादी विचारधारा के सर्वश्रेश्ठ समीक्षक, साहित्येतिहास के भाोध–कर्ता एवं व्याख्याता, ललित निबंधकार, भारतीय संस्कृति के प्राणवान संदे”ावाहक, अप्रतिम कथा f”ाल्पी, सिद्ध संपादक, सहज साधक, कु”ाल उपन्यासकार, सफल अध्यापक और उदारमना साहित्यकार थे। डॉ० f”ावप्रसाद सिंह जी की योग्यता से प्रभावित होकर सन् 1956 में उन्हें का”ाी हिन्दू वि”वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक के पद पर नियुक्त किया गया। भाोध निदे”ाक के रूप में डॉ० f”ावप्रसाद सिंह को अच्छी ख्याति प्राप्त हुई। डॉ० f”ावप्रसाद सिंह के प्रथम द”ार्न में ही उनका धीर गंभीर व्यक्तित्व अमिट छाप छोड़ जाता था। अध्ययन”ाीलता उनका नित्य कर्म था। संघर्श”ाीलता बचपन से ही f”ावप्रसाद जी के जीवन का प्रर्याय बन गया था। अध्ययन”ाील, संघर्श”ाील तथा चिंतन”ाील प्रवृति वाले डॉ० f”ावप्रसाद जी हमे”ाा संवेदन”ाील रहे। अपनी स्पश्टवादिता के कारण f”ावप्रसाद जी साहित्य, राजनीति, धर्म आदि विशयों पर अपने विचार स्पश्ट रूप से व्यक्त किए हैं।

Key Words- डॉ० f”ावप्रसाद सिंह, एतिहासिक उपन्यास, अलग–अलग वैतरणी, गली आगे मुड़ती है, नीला चाँद, ‘”ौलूश, मंजु f”ामा, औरत, कुहरे में युद्ध, दिल्ली दूर है, वै”वानर

Introduction- डॉ० f”ावप्रसाद सिंह का व्यक्तित्व अत्यंत गंभीर एवं विद्वतापूर्ण था। इतिहास, ज्योतिश, साहित्य”ाास्त्र, समाज”ाास्त्र, भाशा विज्ञान, द”ार्न”ाास्त्र आदि में उनकी वि”ोश रूचि थी। वे साहित्य सृजन से लेकर आलोचना तक हिन्दी साहित्य में लगभग पाँच द”ाकों तक छाये रहे। विनम्र, स्पश्टवादी, संघश”ाील, संवेदन”ाील, अध्ययन”ाील आदि f”ावप्रसाद जी के व्यक्तित्व के प्रमुख गुण थे। अपनी स्पश्टवादिता के लिए वे जाने जाते थे। साहित्य हो या प्रजातंत्र, दो एक बातें कहना उनकी आदत थी। अपनी बात कहने के लिए वे कभी किसी से नहीं डरे।

डॉ० शिवप्रसाद सिंह बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने उपन्यासों, नाट्यलेखन, समीक्षा, वैचारिक लेखन, जीवनी, निबंध, आदि विविध गद्य विधाओं में लिखकर हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है। उनका सृजनशील व्यक्तित्व हमारे सामने झलकता है। भारत सरकार की नई शिक्षा नीति के अंतर्गत यू.जी.सी. ने 1986 में उन्हें हिन्दी पाठ्यक्रम विकास केंद्र का समन्वयक नियुक्त किया था। इस योजना के अंतर्गत उनके द्वारा प्रस्तुत हिन्दी पाठ्यक्रम को यू.जी.सी. ने 1989 में स्वीकृति प्रदान की थी और देश के समस्त विश्वविद्यालयों के लिए जारी किया था। वे रेलवे बोर्ड के राजभाशा विभाग के मान्य सदस्य भी रहे और साहित्य अकादमी, बिरला फाउँडेशन, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान जैसे अनेक संस्थाओं से किसी नह किसी रूप में संबद्ध रहे।

हिन्दी साहित्य की समृद्धि के मूल्यांकन का एक आधार ऐतिहासिक उपन्यास भी है। हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों की परंपरा जितनी प्राचीन है उतनी ही श्वास्वी, किन्तु उनका विश्लेशण और आकलन अपेक्षाकृत कम। श्रेश्ठ ऐतिहासिक उपन्यास किसी भी देश, भाशा और साहित्य के लिए गौरव की वस्तु होती है। इसका कारण यह नहीं कि इनके माध्यम से हम देश के इतिहास, उसके विगत राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक जीवन से परिचित होते हैं और देश के हृदय की धड़कनों तथा आत्मा की आवाजें के संपर्क में आते हैं। किन्तु वह किसी देश अथवा राश्ट्र के अतीत प्रतिबिम्ब मात्र ही नहीं, विस्तृत संदर्भों में वह मनुश्य के जीवन का महाकाव्य है जिसमें उसका जीवन अतीत के संदर्भ में अपनी संपूर्ण विशेशताओं राग–विराग, प्रेम, घृणा, क्रोध, करूणा वीरता आदि सहित अभिव्यंजित हो उठता है। एतिहासिक उपन्यास, वस्तुतः मनुश्य जीवन का ही अतीत गर्भ महाकाव्य है।

डॉ० शिवप्रसाद सिंह ने उपन्यास लिखना काफी देर से भाुरू किया। उनका पहला उपन्यास सन् 1967 में ''अलग–अलग वैतरणी'' नाम से प्रकाशित हुआ। लेखक कहते हैं–''उपन्यास लिखने की बात मैं 56–57 के आस–पास से ही सोच रहा था। मेरी बहुत–सी कहानियाँ औपन्यासिक है, उपन्यास होते–होते बच गयी। एक तरह से मैंने उपन्यासों की हत्या करके कहानियाँ लिखी है। फिर सन् 1960 के बाद मन में यह आया कि स्फूट कहानियों से बात नहीं बनेगी। किसी सुनिश्चित प्रयास से लिखा हुआ मेजरबँक सामने आना चाहिए। तब मैंने 'अलग–अलग वैतरणी' लिखी। इसे 1964 में भाुरू किय, 1966 में खत्म हुआ।''[1]

डॉ० शिवप्रसाद सिंह के लेखन के क्षेत्र में आने का कोई खास कारण नहीं था और न ही कुछ सोच–समझकर लिखना प्रारंभ किया था। उन्होंने ऐसा अचानक महसूस किया कि उनमें लिखने की क्षमता है। शिवप्रसाद जी लिखते हैं– ''अचानक लगा कि लिख सकता हूँ और लोगों ने कहा कि आप लिख सकते हैं तो लगा कि अपने को अभिव्यक्त करना भी एक बड़ी चीज है, सो उधर मुड़ गया।''[2]

डॉ० शिवप्रसाद सिंह के चार ऐतिहासिक उपन्यासों– नीला चाँद, कुहरे में युद्ध, दिल्ली दूर है तथा वैशवानर काफी प्रसिद्ध हैं । इन चारों रचनाओं के बल पर ही ये हिन्दी उपन्यासकारों की सूची में ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप मं प्रतिश्ठित हो सके। डॉ० शिवप्रसाद सिंह का सत्र 1988 में प्रकाशित 'नीला चाँद' एक महाकाव्यात्मक उपन्यास है।

प्रख्यात साहित्यकार डॉ० शिवप्रसाद सिंह का जन्म 19 अगस्त सन् 1928 को उत्तर प्रदेश के वाराणसी जनपद में जलालपुर ग्राम के एक सभ्रान्त मध्यवर्गीय कृशक परिवार में हुआ था। यह गाँव वाराणसी जिले में, गाजीपुर जिले की सीमा से एकदम लगा हुआ है और इसका प्रसिद्ध कस्बा जमानियाँ गाजीपुर जिले में पड़ता है। जमानियाँ क्षेत्र के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व को देखते हुए तथा राश्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के क्षाभ एवं विद्रोह से भरे हुए परिवेश के कारण यह कहा जा सकता है कि उनके व्यक्तित्व के विकास में काल एवं स्थान का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

डॉ० शिवप्रसाद सिंह सन् 1956 में उन्हें काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक के पद पर नियुक्त किया गया। इस संस्था से वे अवकाश प्राप्ति तक जुड़े रहे। सन् 1967 में वे रीडर के पद पर अलंकृत हुए। वे विद्यार्थियों में काफी लोकप्रिय रहे। उनके पांडित्य और गंभीर व्यक्तित्व की छाप विद्यार्थियों पर पड़ती रही। डॉ० शिवप्रसाद सिंह जी अपने गुरूतर कार्य में भी पयाप्त सफल रहे। व'विद्यार्थियों में खुब लोकप्रिय रहे एवं आदर के साथ सम्मानपूर्वक व्यापक एवं गंभीर अध्ययन, वाग्मिता तथा स्पश्ट एवं सरल प्रस्तुतीकरण के प्रशंसक हैं।''[3]

उनके यहाँ भाोधार्थियों की भीड़ लगी रहती थी। आवश्यक नहीं था कि ये सभी भाोध छात्र उनके निदेशन में ही पंजीकृत हो। उनके व्यापक अध्ययन, उदार व्यक्तित्व एवं सहयोगी प्रवृति के कारण सुझाव हेतु दूर–दूर से जिज्ञासु विद्यार्थी आते रहे। डॉ० कामेश्वर सिंह गुरू शिश्य के इन संबंधों का उल्लेख करते हुए लिखते हैं ''अपने गंभीर व्यक्तित्व के कारण शिवप्रसाद सिंह विद्यार्थियों से सभी प्रकार की सहानुभूति रखते हुए भी उनसे एक दूरी हमेशा कायम रखते हैं। संभवतः आप इस विचार के पोशक हैं कि शिक्षक एवं विद्यार्थी का संबंध भीत से ठिठुरते व्यक्ति और प्रज्वलित अग्नि के संबंध जैसा है। अग्नि के बिल्कुल समीप जाने में जल जाने का खतरा रहता है तो आवश्यकता से अधिक दूरी रखने पर अप्रभावित रह जाने की निरर्थकता।''[4]

उनके साहित्यिक मित्र, समीक्षक तथा शिश्य उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाते थे। डॉ० राजेंद्र खैरनार जी उनके व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए लिखते हैं– ''पक्का गेंहुँआ रंग, कलीन भोव्ड चहरा, तीखी नाक और काफी बड़ी–बड़ी आँखें'' देखते ही किसपर प्रभाव नहीं पड़ेगा जहाँ एक ओर उनके सिंह सी छाती, हस्ती भुंड सा भुजदंड, साधारण व्यक्ति की आँखां से दो गुना बड़ी आँखें तथा उन्नत ललाट से राजेंद्र प्रसाद पांडेय प्रभावित थे तो दूसरी ओर उनके चौड़े कंधे, लंबा कद, मजबूत काठी गेहुँआ रंग, सुदर्शन चेहरा, आस्था की दृढ़ता और आत्मीयता से छलकती आँखें देखकर जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव अत्यंत प्रभावित थे। रूपसिंह चंदेल उनके व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए लिखते हैं– ''उनका भारीर भव्य, आँखें बड़ी... यदि अतीत में जाएँ तो हम कह सकते हैं कि कुणाल पक्षी जैसी सुंदर, ललाट चौड़ा चेहरा बड़ और पान से रंगे होठ सदैव गुलाबी रहते थे।''[5]

उनके निवास स्थान पर पहुँचते ही उनकी एकांतप्रियता और सहज–सरल जीवन की स्पश्ट झलक देखने को मिलते थी। डॉ० विवेकी राय के भाब्दों में ''बाहर कोई नहीं था। जीती–जागती फुलवारी थी। किन्तु यह समुदाय डॉ० सिंह की रूचियों का पता भर बता सकते थे। हैं– नहीं हैं अथवा 'कुत्ते से सावधान' लिखी तख्तियाँ नहीं थीं, कालवेल भी नहीं। बस इत्मीनान से नील गगन में पंख पसारे उड़ते से महल की छाया में क्षणभर खड़े होकर किसी के बाहर निकलने की प्रतीक्षा की जा सकती थी।''[6]

कम बातें करना और किसी से कम मिलना जुलना उनके स्वभाव में भामिल था। लोगों की यह आम f"ाकायत थी कि वे किसी से बहुत कम मिलते–जुलते थे। f"ावप्रसाद जी कहते हैं– ''मैं अपने से किसी पर खुलता नहीं हूँ। यह मेरा स्वभाव है जबतक कोई खुद बातचीत भुरू नहीं करता है मैं चुप ही रहता हूँ। भायद इसीलिए लोग मुझे गैरमिलनसार मानते हैं।''[7] हालाँकि जो लोग उनके संपर्क में आते थे उनको यह f"ाकायत उनसे नहीं होती थी। वे अपने बारे में फैले भ्रम का न तो खंडन करते थे और न ही ऐसी बातों से ज्यादा प्रभावित होते थे।

डॉ० f"ावप्रसाद सिंह का लेखन क्षेत्र वि"ाल है। सन् 1967 में प्रका"ित कथाकार डॉ० f"ावप्रसाद सिंह का प्रथम और बहुचर्चित उपन्यास ''अलग–अलग वैतरणी'' है जो औपन्यासिक सृजनात्मक भाशा का उत्तम उदाहरण है। यह पहला माहाकाव्यात्मक उपन्यास है जिसमें भारतीय ग्रामीण परंपरा को चित्रित किया गया है। प्रेमचंद के बाद हिन्दी साहित्य में ग्रामीण जीवन और ग्राम में रहने वाले जनता को सभी साहित्यकार भूल गये थे लेकिन स्वातंत्रयोतर काल में डॉ० f"ावप्रसाद सिंह ने ग्रामीणों के माध्यम से बहुत बारीकी से देखकर समाज के सामने लाने का कार्य किया है और साथ–साथ स्वातंत्रयोतर लेखकों का ध्यान ग्रामीणों के तरफ खींचने का काम उन्होंने इस उपन्यास के माध्यम से किया है।

सन् 1974 में प्रका"ित डॉ० f"ावप्रसाद सिंह जी का दूसरा उपन्यास 'गली आगे मुड़ती है' है जो बनारस की पृश्ठभूमि में लिखा गया है। बनारस की गलियाँ, मंदिर, मठ, गंगा की बाढ़, वि"वविद्यालय के प्राध्यापक और छात्र, उनके आपसी संबंध, समस्याएँ तथा धार्मिक वि"वास प्रस्तुत उपन्यास के मुख्य विशय हैं। डॉ० f"ावप्रसाद जी के भाब्दों में –''यवा आक्रो"ा पूरे समाज में फैली वस्तु है। और उसे ठीक से समझने के अभाव में न तो उसका सही निदान हो रहा है और न ही उसे सही दि"ाा देने की सार्थक को f"ा"ा।''[8]

सन् 1988 में प्रका"ित 'नीला चाँद' ऐतिहासिक उपन्यास परंपरा के विकास की अगली कड़ी है जिसके लेखक डॉ० f"ावप्रसाद सिंह वर्तमान संदर्भों में प्रासंगिक, ग्राहय, नये मूल्यों की सर्जना में प्रयत्न"ाील रचनाकार के रूप में उभरकर सामने आते हैं। यह एक बृहंतकाय और f"ावप्रसाद जी का तीसरा उपन्यास है। इसमें परिवे"ा अपने अनेक रूपों में उपस्थित हुआ है। राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक, प्राकृतिक आदि में सभी परिवे"ा अपनी पूरी जीवंतता के इस उपन्यास को सजीवता प्रदान करते हैं। बदलते जीवन मूलयों और नैतिकता के मानदंड, स्वार्थ– लोलुपता, व्यवस्था की सड़ी–गली परंपरा, अवसरवादिता, पैंतराबाजी, दलबंदी, भ्रश्टाचार आदि ऐसी बहुत सी धाराएँ है जो इस उपन्यास में सदैव नजर आती है। प्रस्तुत

उपन्यास में चंदेल राजा नन्नुक 'नानुक' के व"ाज सम्राट विद्याधर देव के पौत्र कीर्तिवर्मा की एक संघर्श गाथा है।

डॉ० ि"ावप्रसाद सिंह का सन् 1989 में प्रकाि"ात चौथा उपन्यास '"ौलूश' है। यह उपन्यास लोकसंस्कृति की पृश्ठभूमि पर एक स"ाक्त औपन्यासिक कृति है। इसमें खानाबदो"ा नटों के जीवन एवं संस्कृति का विस्तारपूर्वक चित्रण किया गया है। ि"ावप्रसाद जी के भाब्दों में– ''हिन्दु मुसलमान नट मेरो जिंदगी के खास हिस्सा बन गए हैं। '"ौलूश' में इस कबीले को मैंने अपने खून की स्याही बनाकर चित्रित कर दिया है।''[9]

सन् 1990 में प्रकाि"ात 'मंजू"ामा' डॉ० ि"ावप्रसाद सिंह का भाोकान्त उपन्यास है जिसे उन्होंने अपनी पुत्री 'मंजूश्री' की स्मृति में लिखा है। प्रस्तुत उपन्यास में एक साथ आत्मकथा, आत्मकथात्मक उपन्यास, आत्मस्मरण, पुत्री–संस्मरण, यात्रावृत, चिकित्सा वृत, चिकित्सा प्रकिया, चिकित्सा विवरण, डायरी, पत्र, ललित निबंध और दा"ाकी सबके एक साथ द"ान हो जाते हैं। स्वयं लेखक ने इसे उपन्यास और वेदनापनिशद दोनों कहा है।

उपन्यास में 'मंजूश्री' एक अहम भूमिका में चित्रित है । वह एक दिन अचानक बिमार हो जाती है। बाद में पता चलता है कि उसकी दोनों कीडनियाँ खराब हो चुकी है जहाँ से एक पिता के संघर्श की कथा भाुरू होती है। यह उपन्यास लेखक के जीवन का वह कालखंड है जिसने सात वर्शों तक एक व्यक्ति की परीक्षा ली तथा एक पिता की भावनाओं को ललकारा। मृत्यु के द्वार पर खड़ी बेटी को बचाने की एक पिता की छटपटाहट है– 'मंजू"ामा'। डॉ० पांडेय भाि"ाभूशण '"ीतां"ाु' के भाब्दों में– ''डॉ० सिंह का सर्जक व्यक्तित्व, कहानीकार, उपन्यासकार, काव्यरूपकार, ललित निबंधकार और चिंतक, दा"ाकि का व्यक्तित्व रहा है।''[10]

सन् 1992 में प्रकाि"ात 'औरत' डॉ० ि"ावप्रसाद सिंह की रचना–श्रृंखला की अगली कड़ी है जिसका कथानक पूर्वांचल की नारी के संबंध में है। प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से लेखक ने समाज"ाास्त्रियों तथा सरकारी संरचाओं के उन तर्कों को खोखला सिद्ध कर दिया है जो कहते हैं कि भारतीय नारी अब उपने अधिकारों के प्रति सचेत हो गयी है। उसे समान अधिकार मिल गये हैं। वह पुरूशों के कंधों से कंधे मिलाकर चल सकने में सक्षम हैं। उपन्यास में भाुरू से अंत तक औरत का अस्तित्व हावी है। भारतीय औरत की व्यथा और उसके औरतपन की यथार्थ अभिव्यक्ति ही इस उपन्यास का केंद्र बिंदु है। इस उपन्यास का नायक ि"ावेंद्र है जो समाज"ाास्त्र विभाग में प्रवक्ता है और उपने मित्र प्रेमस्वरूप के निर्दे"ान से वह पीएच. डी. का भाोध करते हैं। भाोध प्रबंध का विशय 'पूर्वांचल में नारी की स्थिति' पर आधारित है। एक पुरूश कथाकार होते हुए उसमें एक औरत की मानसिकता के अंदर झाँक कर उसकी व्यथा को बहुमुखी यथार्थ को कथा की सृजनात्मकता प्रदान की है।

सन् 1995 में प्रकाि"ात डॉ० ि"ावप्रसाद सिंह का सातवां उपन्यास 'कुहरे में युद्ध' है। यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है । यह उपन्यास 'हनोज दिल्ली दूर अस्त' का पहला भाग है। मध्यकाल से लेकर आजादी पूर्व तक का भारतीय इतिहास उथल–पुथल युक्त रहा। महमूद गजनवी के साथ आकमणों का जो कम आरंभ हुआ उसने भारतीय संस्कृति को जिस प्रकार क्षति पहुँचाने का काम किया है इतिहास की वास्तविकता इस उपन्यास के माध्यम से दिखाने का काम लेखक ने किया है। ''जहाँ आज कुतुबमीनार है वहाँ बिश्णुपद की पहाड़ी थी। जिसपर विश्णु मंदिर था। उसे तोड़कर मस्जिद 'कुब्बते इस्लाम' कुतुबुद्दीन ऐबक के समकक्ष बनायी गयी थी जिसे अतम"ा और अत्लाउद्दीन खिलजी ने आगे बढ़ाया था।''[11]

सन् 1993 में प्रकाि"ात ि"ावप्रसाद जी का आठवाँ उपन्यास 'दिल्ली दूर है' जो 13वीं तथा 14वीं भादी के मध्यकालीन इस्लाम से आकांत भारतीय जीवन पर आधारित है। यह उपन्यास 'हनोज दिल्ली दूर अस्त' का दूसरा भाग है जो एतिहासिक होते हुए भी तत्कालीन दिल्ली सल्तनत से संबंधित एतिहासिक घटनाओं का अंकन करता है। इसके साथ ही इसमें नामदेव, ज्ञाने"वर, अमीर खुसरों जैसे साधकों का उल्लेख है जो उपन्यास को सांस्कृतिक पृश्ठभूमि प्रदान करते हैं। प्रेमपरक उपन्यास के रूप में भी यह सफल उपन्यास है।

आनंद की मृत्यु पर उसकी चिता में प्रवे"ा करते हुए देविका ने अपना प्रेम सिद्ध किया तो चित्रकार हाि"ाम की बहन नजमा मुस्लिम होकर भी आनंद के प्रेम के लिए अविवाहित रहती है। देविका और नजमा दोनों के असफल प्रेम की कथा उपन्यास को मार्मिक बना देती है। डॉ० ि"ावप्रसाद सिंह पूरे उपन्यास में आनंद वा"ोक के माध्यम से मानवता के पक्षधर के रूप में उपस्थित होते रहते हैं। उपसंहार स्वरूप दिल्ली को अच्छी तरह से पहचानने के बाद वा"ोक कहता है– ''यह दिल्ली धोखेबाजों की दिल्ली है.. यह धोखेबाजों की दिल्ली, खुदा या ई"वर के नाम की माला जपने वाले रंगे सियारों की दिल्ली। सारी दुनियाँ से विदे"ियों को बुलाकर बसानेवाले सुल्तानों की दिल्ली। गरीबों का खून चूसने वालों की दिल्ली।''[12]

सन 1996 में प्रकाि"ात 'वै"वानर' डॉ० ि"ावप्रसाद सिंह जी का अंतिम उपन्यास है। 'का"ीत्रयी' लिखने का संकल्प इसी उपन्यास के साथ पूरा हुआ है। यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है । हमारे जीवन के पृथ्वी पर अवतरित होने से लेकर मरने तक की प्रकिया में मंत्र द्वारा सारे कर्मकांड संपादित होते हैं। इस उपन्यास में डॉ० ि"ावप्रसाद सिंह ने पुरानों को साक्ष्य रखकर प्राचीन धार्मिक देवी देवताओं का उदाहरण देकर आधुनिक युग में उस एतिहासिक सत्य को सामने रखने का प्रयत्न किया है। उपन्यास का नायक प्रतर्दन का संघर्शयुक्त जीवन उपन्यास की कथाभूमि है। 'वै"वानर' की तरह खुद जलते रहे और लोगों के जीवन का अंधकार दूर किया है। प्रपौत्र प्रतर्दन का जीवन भी वै"वानर के समान है। वेदकालीन का"ी का चित्रण करने के उद्दे"य से ही वै"वानर का सृजन लेखक ने किया है। उपन्यास देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि का"ी का मंडल चक ि"ाव परमात्मा द्वारा सार्वभौम सत्य को दृश्टि में रखकर निर्मित हुआ है, ''प्राचीनतम नगरों में जीवित कुछ कहीं नगर बचे हैं। उनमें का"ी की स्थिति वि"िश्ट है।''[13]

डॉ० ि"ावप्रसाद सिंह के उपन्यासों का अध्ययन तथा विवेचन विराट है। वे 22 वर्श की आयु से साहित्य साधना प्रारंभ किये और जीवन के अंतिम क्षणों तक अर्थात लगातार 39 वर्शों तक गहन तप करते रहे। उन्हांने उपन साहित्यिक जीवन में विभिन्न विधाओं पर अपनी लेखनी चलाकर हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है।

CONCLUSION- डॉ० ि"ावप्रसाद सिंह बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने उपन्यासों को लिखकर हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है। उनका सृजन"ाील व्यक्तित्व हमारे सामने झलकता है। वे भाुद्ध मानवतावादी लेखक हैं। उनके मानव मन की गहराइयों में उतरकर समस्याओं के मूल स्वरूप की खोज करते हैं। उनके चित्रण में कहीं पर भी हमें अ"लीलता के द"ान नहीं होते हैं। वे मानव की गहरी पकड़ रखनेवाले प्रबुद्ध, संवेदन"ाील एवं सात्विक वृत्ति के साहित्यकार हैं।

संदर्भ सूचीः

1. सरीका (मासीक) फरवरी 1980, पृश्ठ– 12–13
2. राजेंद्र अवस्थी, प्र"नों के घेरे
3. तिवारी, डॉ० रामचंद्र, हिन्दी गद्य साहित्य का इतिहास पृ०– 77
4. अक्षय, अप्रैल–जून, पृश्ठ– 9
5. गर्दि"ा के दिन, संपादक, कमले"वर पृश्ठ– 75
6. सिंह, डॉ० कामे"वर, व्यक्तित्व और रचना धर्मिता, पृश्ठ– 13
7. वही, पृश्ठ– 13
8. गली आगे मुड़ती है– ि"ावप्रसाद सिंह नुक्कड़ सभा (प्रस्तावना) से
9. क्या कहूँ कुछ कहा न जाये– ि"ावप्रसाद सिंह, पृश्ठ– 113
10. डॉ० पांडेय भाि"ाभूशण '"ीता"ाु' 'मंजुि"ामा', गद्य– के"ाांतिका का परिमा, पृश्ठ 364
11. डॉ० सत्यदेव त्रिपाठी, ि"ावप्रसाद सिंह का कथा साहित्य, पृश्ठ– 24
12. डॉ० ि"ावप्रसाद सिंह, दिल्ली दूर है, पृश्ठ– 598
13. डॉ० ि"ावप्रसाद सिंह, कुहरे में युद्ध, पृश्ठ– 326